सम्पूर्ण श्रीमद् भगवद्गीता

श्रीमद्भगवद्गीता हिन्दुओं के पवित्रतम ग्रन्थों में से एक है। महाभारत के अनुसार कुरुक्षेत्र युद्ध में भगवान श्री कृष्ण ने गीता का सन्देश अर्जुन को सुनाया था। यह महाभारत के भीष्मपर्व के अन्तर्गत दिया गया एक उपनिषद् है। भगवत गीता में एकेश्वरवाद, कर्म योग, ज्ञानयोग, भक्ति योग की बहुत सुन्दर ढंग से चर्चा हुई है।

श्रीमद्भगवद्गीता की पृष्ठभूमि महाभारत का युद्ध है। जिस प्रकार एक सामान्य मनुष्य अपने जीवन की समस्याओं में उलझकर किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है और जीवन की समस्यायों से लड़ने की बजाय उससे भागने का मन बना लेता है उसी प्रकार अर्जुन जो महाभारत के महानायक थे। अपने सामने आने वाली समस्याओं से भयभीत होकर जीवन और क्षत्रिय धर्म से निराश हो गए थे, अर्जुन की तरह ही हम सभी कभी-कभी अनिश्चय की स्थिति में या तो हताश हो जाते हैं और या फिर अपनी समस्याओं से विचलित होकर भाग खड़े होते हैं।

भारत वर्ष के ऋषियों ने गहन विचार के पश्चात जिस ज्ञान को आत्मसात किया उसे उन्होंने वेदों का नाम दिया। इन्हीं वेदों का अंतिम भाग उपनिषद कहलाता है। मानव जीवन की विशेषता मानव को प्राप्त बौद्धिक शक्ति है और उपनिषदों में निहित ज्ञान मानव की बौद्धिकता की उच्चतम अवस्था तो है ही, अपितु बुद्धि की सीमाओं के परे मनुष्य क्या अनुभव कर सकता है उसकी एक झलक भी दिखा देता है।

श्रीमद्भगवद्गीता वर्तमान में धर्म से ज्यादा जीवन के प्रति अपने दार्शनिक दृष्टिकोण को लेकर भारत में ही नहीं विदेशों में भी लोगों का ध्यान अपनी और आकर्षित कर रही है। निष्काम कर्म का गीता का संदेश प्रबंधन गुरुओं को भी लुभा रहा है। विश्व के सभी धर्मों की सबसे प्रसिद्ध पुस्तकों में शामिल है। गीता प्रेस गोरखपुर जैसी धार्मिक साहित्य की पुस्तकों को काफी कम मूल्य पर उपलब्ध कराने वाले प्रकाशन ने भी कई आकार में अर्थ और भाष्य के साथ श्रीमद्भगवद्गीता के प्रकाशन द्वारा इसे आम जनता तक पहुंचाने में काफी योगदान दिया है।

श्रीमद् भगवद गीता के अट्ठारह अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण ने कर्म योग, भक्ति योग और ज्ञान योग की विस्तृत प्ररूपना करी है। मेरे अब तक के पढ़े हुए किसी भी धर्म-ग्रंथ में मार्ग की सम्पूर्ण-समग्रता को इतनी सूक्ष्मता से दर्शाया नहीं गया जैसा कि भगवद गीता के माध्यम से गाया गया है। सांसारिक मनुष्य का अस्तित्व शरीर, मन और बुद्धि के तीन उपकरण से बना है। ऐसे में किसी एक मार्ग का चुनाव करके उससे योग (ध्यान) साधने की मनुष्य की कोशिश निरर्थक ही रहती है। कर्म-भक्ति-ज्ञान इन तीन मार्ग की गहन समझ और घनिष्ट दृढ़ता ही मनुष्य में ध्यान की भूमिका का निर्माण करते है।

मनुष्य की मूलभूत भूल

श्रीमद् भगवद गीता का अभ्यास व नित्य पाठ करते मनुष्य में भी ऐसा भ्रम है कि कर्म-भक्ति-ज्ञान में से किसी एक मार्ग का चुनाव करके उसपर चलने से ईश्वर की प्राप्ति होगी। परंतु किसी भी उपाय से कर्म-भक्ति-ज्ञान मार्ग का विभाजन नहीं किया जा सकता क्योंकि मनुष्य का अस्तित्व अखंड है — शरीर-मन-बुद्धि तीनों ही उपकरणों से मनुष्य को परम तत्त्व तक पहुँचना है।

भगवद गीता - मार्ग का क्रम

- श्रीमद् भगवद गीता का पहला अध्याय-पात्र परिचय का अध्याय है। दूसरे अध्याय में सांख्य योग की उद्घोषणा है। यदि कोई पूर्व का आराधक है तो दूसरे अध्याय के बोध से ही उसके आंतरिक संस्कार जागृत हो जाएँगे और वह ध्यान की परम समाधि को उपलब्ध हो जाएगा।

- परंतु जो पूर्व का आराधक नहीं है उसे फिर मार्ग के क्रम का पालन करना होगा। इसलिए तीसरे से छठे अध्याय तक कर्म योग की प्रस्तावना है।
- कर्म योग से निष्काम कर्म (कर्म कर फल की इच्छा नहीं कर) के बीज डलते हैं जो हमारी बुद्धि को कामनाओं से आज़ाद करती है। अध्यात्म क्षेत्र में निष्काम बुद्धि ही 'हृदय' कहलाती है और यह हृदय अब तैयार होता है ईश्वर के स्वरूप को समझने के लिए।
- इसलिए सातवें से बारहवें अध्याय तक भक्ति योग में ईश्वर के स्वरूप का भरपूर वर्णन है। ईश्वर के स्वरूप को समझ कर अब अपने भीतर उस ईश्वरत्व का अनुभव करने का क्या मार्ग है यही ज्ञान योग में तेरहवें से अट्ठारवें अध्याय का विषय है।

अर्जुनविषादयोग - अध्याय एक
सांख्ययोग - अध्याय दो
कर्मयोग - अध्याय तीन
ज्ञानकर्मसंन्यासयोग - अध्याय चार
कर्मसंन्यासयोग - अध्याय पाँच
आत्मसंयमयोग - छठा अध्याय
ज्ञानविज्ञानयोग - सातवाँ अध्याय
अक्षरब्रह्मयोग - आठवाँ अध्याय
राजविद्याराजगुह्ययोग - नौवाँ अध्याय
विभूतियोग - दसवाँ अध्याय
विश्वरूपदर्शनयोग - ग्यारहवाँ अध्याय
भक्तियोग - बारहवाँ अध्याय
क्षेत्र-क्षेत्रज्ञविभागयोग - तेरहवाँ अध्याय
गुणत्रयविभागयोग - चौदहवाँ अध्याय
पुरुषोत्तमयोग - पंद्रहवाँ अध्याय
दैवासुरसम्पद्विभागयोग - सोलहवाँ अध्याय
श्रद्धात्रयविभागयोग - सत्रहवाँ अध्याय
मोक्षसंन्यासयोग - अठारहवाँ अध्याय

अर्जुनविषादयोग - अध्याय एक

01-11 दोनों सेनाओं के प्रधान शूरवीरों और अन्य महान वीरों का वर्णन
12-19 दोनों सेनाओं की शंख-ध्वनि का वर्णन
20-27 अर्जुन का सैन्य परिक्षण, गाण्डीव की विशेषता
28-47 अर्जुनका विषाद,भगवान के नामों की व्याख्या

सांख्ययोग - अध्याय दो

01-10 अर्जुन की कायरता के विषय में श्री कृष्णार्जुन-संवाद
11-30 गीताशास्त्रका अवतरण
31-38 क्षत्रिय धर्म और युद्ध करने की आवश्यकता का वर्णन
39-53 कर्मयोग विषय का उपदेश
54-72 स्थिरबुद्धि पुरुष के लक्षण और उसकी महिमा

कर्मयोग - अध्याय तीन

01-08 ज्ञानयोग और कर्मयोग के अनुसार अनासक्त भाव से नियत कर्म करने की आवश्यकता
09-16 यज्ञादि कर्मों की आवश्यकता तथा यज्ञ की महिमा का वर्णन
17-24 ज्ञानवानऔर भगवान के लिए भी लोकसंग्रहार्थ कर्मों की आवश्यकता
25-35 अज्ञानी और ज्ञानवान के लक्षण तथा राग-द्वेष से रहित होकर कर्म करने के लिएप्रेरणा
36-43 पापके कारणभूत कामरूपी शत्रु को नष्ट करने का उपदेश

ज्ञानकर्मसंन्यासयोग - अध्याय चार

01-15 योग परंपरा, भगवान के जन्म कर्म की दिव्यता, भक्त लक्षणभगवत्स्वरूप
16-18 कर्म-विकर्म एवं अकर्म की व्याख्या
19-23 कर्म में अकर्मता-भाव, नैराश्य-सुख, यज्ञ की व्याख्या
24-33 फलसहित विभिन्न यज्ञों का वर्णन
34-42 ज्ञान की महिमा तथा अर्जुन को कर्म करने की प्रेरणा

कर्मसंन्यासयोग - अध्याय पाँच

01-06 ज्ञानयोग और कर्मयोग की एकता, सांख्य पर का विवरण और कर्मयोगकी वरीयता
07-12 सांख्ययोगी और कर्मयोगी के लक्षण और उनकी महिमा
13-26 ज्ञानयोग का विषय
27-29 भक्ति सहित ध्यानयोग तथा भय, क्रोध, यज्ञ आदि का वर्णन

आत्मसंयमयोग - छठा अध्याय

01-04 कर्मयोग का विषय और योगारूढ़ के लक्षण, काम-संकल्प-त्याग कामहत्व
05-10 आत्म-उद्धार की प्रेरणा और भगवत्प्राप्त पुरुष के लक्षण एवं एकांतसाधना का महत्व
11-15 आसन विधि, परमात्मा का ध्यान, योगी के चार प्रकार
16-32 विस्तार से ध्यान योग का विषय
33-36 मन के निग्रह का विषय
37-47 योगभ्रष्ट पुरुष की गति का विषय और ध्यानयोगी की महिमा

ज्ञानविज्ञानयोग - सातवाँ अध्याय

01-07 विज्ञान सहित ज्ञान का विषय,इश्वर की व्यापकता
08-12 संपूर्ण पदार्थों में कारण रूप से भगवान की व्यापकता का कथन
13-19 आसुरी स्वभाव वालों की निंदा और भगवद्भक्तों की प्रशंसा
20-23 अन्य देवताओं की उपासना और उसका फल
24-30 भगवान के प्रभाव और स्वरूप को न जानने वालों की निंदा और जाननेवालों की महिमा

अक्षरब्रह्मयोग - आठवाँ अध्याय

01-07 ब्रह्म, अध्यात्म औरकर्मादि के विषय में अर्जुन के सात प्रश्न और उनका उत्तर
08-22 भगवानका परम धाम और भक्ति के सोलह प्रकार
23-28 शुक्लऔर कृष्ण मार्ग का वर्णन

राजविद्याराजगुह्ययोग - नौवाँ अध्याय

01-06 परम गोपनीय ज्ञानोपदेश, उपासनात्मक ज्ञान, ईश्वर का विस्तार
07-10 जगत की उत्पत्ति का विषय
11-15 भगवान का तिरस्कार करने वाले आसुरी प्रकृति वालों की निंदा औरदेवी प्रकृति वालों के भगवद् भजन का प्रकार
16-19 सर्वात्म रूप से प्रभाव सहित भगवान के स्वरूप का वर्णन
20-25 सकाम और निष्काम उपासना का फल
26-34 निष्काम भगवद् भक्ति की महिमा

विभूतियोग - दसवाँ अध्याय

01-07 भगवान की विभूति और योगशक्ति का कथन तथा उनके जानने का फल
08-11 फल और प्रभाव सहित भक्तियोग का वर्णन
12-18 अर्जुन द्वारा भगवान की स्तुति तथा विभूति और योगशक्ति को कहनेके लिए प्रार्थना
19-42 भगवान द्वारा अपनी विभूतियों और योगशक्ति का वर्णन

विश्वरूपदर्शनयोग - ग्यारहवाँ अध्याय

01-04 विश्वरूप के दर्शन हेतु अर्जुन की प्रार्थना
05-08 भगवान द्वारा अपने विश्व रूप का वर्णन
09-14 संजय द्वारा धृतराष्ट्र के प्रति विश्वरूप का वर्णन
15-31 अर्जुन द्वारा भगवान के विश्वरूप का देखा जाना और उनकी स्तुतिकरना
32-34 भगवान द्वारा अपने प्रभाव का वर्णन और अर्जुन को युद्ध के लिएउत्साहित करना
35-46 भयभीत हुए अर्जुन द्वारा भगवान की स्तुति और चतुर्भुज रूप कादर्शन कराने के लिए प्रार्थना
47-50 भगवान द्वारा अपने विश्वरूप के दर्शन की महिमा का वर्णन तथाचतुर्भुज और सौम्य रूप का दिखाया जाना
51-55 बिना अनन्य भक्तिके चतुर्भुज रूप के दर्शन की दुर्लभता का और फलसहित अनन्य भक्ति का कथन।

भक्तियोग - बारहवाँ अध्याय

01-12 साकार और निराकार के उपासकों की उत्तमता का निर्णय औरभगवत्प्राप्ति के उपाय का वर्णन
13-20 भगवत्-प्राप्त पुरुषों के लक्षण

क्षेत्र-क्षेत्रज्ञविभागयोग - तेरहवाँ अध्याय

01-18 ज्ञानसहित क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ का वर्णन
19-34 ज्ञानसहितप्रकृति-पुरुष का वर्णन

गुणत्रयविभागयोग - चौदहवाँ अध्याय

01-04 ज्ञान की महिमा और प्रकृति-पुरुष से जगत् की उत्पत्ति
05-18 सत्, रज, तम- तीनों गुणों का वर्णन
19-27 भगवत्प्राप्ति का उपाय और गुणातीत पुरुष के लक्षण

पुरुषोत्तमयोग - पंद्रहवाँ अध्याय

01-06 संसाररूपी अश्वत्वृक्ष का स्वरूप और भगवत्प्राप्ति का उपाय
07-11 इश्वरांश जीव, जीव तत्व के ज्ञाता और अज्ञाता
12-15 प्रभाव सहित परमेश्वर के स्वरूप का वर्णन
16-20 क्षर, अक्षर, पुरुषोत्तम का विश्लेषण

दैवासुरसम्पद्विभागयोग - सोलहवाँ अध्याय

01-05 फलसहित दैवी और आसुरी संपदा का कथन
06-20 आसुरी संपदा वालों के लक्षण और उनकी अधोगति का कथन
21-24 शास्त्रविपरीत आचरणों को त्यागने और शास्त्रानुकूल आचरणों केलिए प्रेरणा

श्रद्धात्रयविभागयोग - सत्रहवाँ अध्याय

01-06 श्रद्धा और शास्त्रविपरीत घोर तप करने वालों का विषय
07-22 आहार, यज्ञ, तप और दान केपृथक-पृथक भेद
23-28 ॐतत्सत् के प्रयोग की व्याख्या

मोक्षसंन्यासयोग - अठारहवाँ अध्याय

01-12 त्याग का विषय
13-18 कर्मों के होने में सांख्यसिद्धांत का कथन
19-40 तीनों गुणों के अनुसार ज्ञान, कर्म, कर्ता,बुद्धि,धृतिऔर सुख के पृथक-पृथक भेद
41-48 फल सहित वर्ण धर्म का विषय
49-55 ज्ञाननिष्ठा का विषय
56-66 भक्ति सहित कर्मयोग का विषय
67-78 श्री गीताजी का माहात्म्य

प्रथम अध्याय - अर्जुन-विषाद योग

इस अध्याय में कुल 47 श्लोकों द्वारा श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन की मन: स्थिति का वर्णन किया गया है, कि किस तरह अर्जुन अपने सगे-संबंधियों से युद्ध करने से डरते हैं,वे अपनों से द्वंद नही करना चाहते है, वह चाहते हैं कि किसी तरह से आपसी सन्धि हो सके,लेकिन भगवान कृष्ण उन्हें बार-बार समझाते हैं, यह कर्म भूमि है, मनुष्य का वास्तविक घर तो परम धाम है,यह संसार तो उसके लिए पल भर का खेल है, सब अपने यहीं छूट जाते है,लेकिन जो धर्म के अनुसार कर्म करता है वही उस मानव के साथ जाता है।लेकिन श्रीकृष्ण कहते है कि क्षेत्रीय का पर धर्म युद्ध ही है,छूप कर बैठना या अपनों के लिए शोक मनाना नहीं।

द्वितीय अध्याय -सांख्य-योग

इस अध्याय मे कुल 72 श्लोक हैं, इस अध्याय में अर्जुन श्रीकृष्ण से अपने मन के भावों को अभिव्यक्त करते हुए कहता है, कि मै उन पर बाणों की वर्षा कैसे करूं जो कि मेरे पूजनीय है,मेरे सगे सम्बन्धी है,आखिर लोग क्या कहेंगे कि राज-पाठ की लालसा से अपनों को ही आघात पहुंचाया। फिर श्रीकृष्ण, अर्जुन को कर्मयोग, ज्ञानयोग, सांख्ययोग, बुद्धि योग और आत्म का ज्ञान देते हैं। आखिर आत्मा को कौन मार सकता है,फिर यह शरीर तो नश्वर है,और यहाँ के मानव कुछ पल के साथी है। इसीलिए तुम्हारे लिए युद्ध करना ही उचित होगा, वास्तव में यह अध्याय पूरी गीता का सारांश भी बताया गया है। इसे बेहद महत्वपूर्ण भाग माना जाता है। जो पूरे विश्व के लिए प्रेरणा दायक है।

तृतीय अध्याय – कर्मयोग

इस अध्याय को कर्मयोग माना गया है,जहाँ अर्जुन को कर्म करने के लिए उद्धत किया जाता है। इसमें 43 श्लोक हैं। श्रीकृष्ण अर्जुन को समझाते हैं कि रणभूमी में परिणाम की चिंता तो कायर करते है,योद्धा कभी फल की कामना नहीं करते ,तुम तो एक माध्यम हो,करने वाला तो ईश्वर ही है। इसीलिए हमें सिर्फ कर्म करते रहना चाहिए।

चतुर्थ अध्याय - ज्ञान कर्म संन्यास योग

इस अध्याय में है,कुल 42 श्लोक हैं।इसमें श्रीकृष्ण अर्जुन को समझाते हुए कहते है कि इस जगत में ज्ञान की ही पराकाष्ठा है और ज्ञान ही श्रेष्ठ है,और उससे भी अधिक गुरु की पराकाष्ठा है जो हमें प्रकाशमय करता है। अर्जुन को इसमें श्रीकृष्ण बताते हैं कि धर्मपारायण के संरक्षण और अधर्मी के विनाश के लिए गुरु का अत्यधिक महत्व है।अर्थात गुरू के बताए मार्ग का अनुसरण करना भी शिष्य का परम कर्तव्य है, इसीलिए तुम युद्ध के लिए तैयार हो जाओ ।

पंचम अध्याय - कर्म संन्यास योग

इस अध्याय में 29 श्लोक हैं। अर्जुन इसमें श्रीकृष्ण से पूछते हैं कि कर्मयोग और ज्ञान योग दोनों में से उनके लिए कौन-सा उत्तम है।मन की भाव अभिव्यक्ति मनुष्य को बन्धन में बांध देती है,लेकिन उसका सच्चा ज्ञान ही उसका मार्गदर्शक होता है। तब श्रीकृष्ण कहते हैं कि दोनों का लक्ष्य एक है परन्तु कर्म योग बेहतर है।क्योंकि कर्म करने से ही उसे सच्चे ज्ञान का अनुभव हो पाएगा।

षष्ठ अध्याय - आत्मसंयम योग

इस अध्याय में 47 श्लोक हैं। इसमें श्रीकृष्ण, अर्जुन को अष्टांग योग के बारे में बताते हैं। वह बताते हैं कि किस प्रकार मन की दुविधा को दूर किया जा सकता है।मन को एकाग्र कैसे किया जाता है,अन्तःकरण की शुद्धि से ही मन के द्वंद्व दूर होते है और हम कर्म के लिए उद्धत होते है, इसलिए लिए हे अर्जुन आप अपने विचलित मन को स्थिरता देने के लिए योग की सरण में जाओ जहाँ तुम्हारे हर सवालों का जवाब है।

सप्तम अध्याय - ज्ञानविज्ञान योग

इस अध्याय में 30 श्लोक हैं। इसमें कहा गया है कि यह संसार शाश्वत नहीं है,यहाँ कुछ भी अमर नहीं है एक दिन सब नष्ट हो जाना है। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को निरपेक्ष वास्तविकता और उसके भ्रामक ऊर्जा +माया+ के बारे में बताते हुए कहते हैं,कि तुम किस चीज की चिंता करते हो यहाँ कोई किसी का नहीं है।

अष्टम अध्याय – अक्षरब्रह्मयोग

इस अध्याय में 28 श्लोक हैं। इसमें कहा गया है कि अक्षर ही ब्रह्म है,उसकी शक्ति से ही सब कुछ चलता है,इसलिए तू उस परमात्मा का चिंतन कर, इस पाठ में स्वर्ग और नरक का सिद्धांत शामिल भी कहा है। इसमें मृत्यु से पहले व्यक्ति को सोच, आध्यात्मिक संसार तथा नरक और स्वर्ग को जाने की राह के बारे में बताया गया है।

नवम अध्याय - राजविद्याराजगुह्य योग

इस अध्याय में 34 श्लोक हैं। इसमें अर्जुन से कहा गया है कि तुम अपनी आंतरिक शक्ति को पहचानों और बताया है कि श्रीकृष्ण की आंतरिक ऊर्जा सृष्टि को व्याप्त बनाती है उसका सृजन करती है और पूरे ब्रह्मांड को नष्ट कर देती है। जो कि आत्मा को मेरे में एकीभाव करके मेरे को ही प्राप्त होगा।

दशम अध्याय- विभूति योग
इस अध्याय में 42 श्लोक हैं। कृष्ण अर्जुन से कहते है कि मै ही इस सम्पूर्ण जगत माया को योगमाया के एक अंशमात्र से धारण करके स्थित हूँ, इसीलिए मेरे को ही तत्व से जानना चाहिए। श्रीकृष्ण अर्जुन को बताते हैं कि किस प्रकार सभी तत्वों और आध्यात्मिक अस्तित्व के अंत का कारण बनते हैं।जो कि उस परमात्मा से चिंन्हित है।

एकादश अध्याय - विश्वस्वरूपदर्शन योग
इस अध्याय में 55 श्लोक हैं। श्रीकृष्ण कहथे है कि मुझमें ही समस्त संसार समाहित है, अर्जुन के आग्रह पर ही श्रीकृष्ण अपना विश्वरूप धारण करते हैं। जिसे देख अर्जुन आश्चर्यचकित हो उठते है।

द्वादश अध्याय - भक्ति योग
इस अध्याय में 20 श्लोक हैं।श्रीकृष्ण कहते है कि भक्ति ही मुक्ति का एकमात्र द्वार है,और भगवद् भक्ति मे ही अथाह शक्ति समाहित है। इसके साथ ही वह भक्ति योग

त्रयोदश अध्याय - क्षेत्र क्षत्रज्ञ विभाग योग
इस अध्याय में 34 श्लोक हैं। इसमें श्रीकृष्ण अर्जुन को क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के भेद को तथा विकार सहित प्रकृति से छूटने के उपाय को जो पुरुष ज्ञान नेत्रों द्वारा तत्व से जानते हैं, वे महात्माजन परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त होते है।इस अध्याय मे श्रीकृष्ण अर्जुन को ज्ञान के बारे में तथा सत्व, रज और तम गुणों द्वारा अच्छी योनि में जन्म लेने का उपाय बताते हैं। जो समस्त प्राणियों के लिए मार्गदर्शक है।

चतुर्दश अध्याय - गणत्रय विभाग योग
इस अध्याय में 27 श्लोक हैं। श्रीकृष्ण कहते है कि उस अविनाशी परब्रह्म का और अमृत तथा नित्य धर्म का और अखण्ड एकरस आनन्द का मैं ही आश्रय हूँ, इसमें श्रीकृष्ण सत्व, रज और तम गुणों का तथा मनुष्य की उत्तम, मध्यम अन्य गतियों का विस्तारपूर्वक वर्णन करते हैं। अर्थात ब्रह्म, अमृत अव्यय और शाश्वत धर्म तथा एकान्तिक सुख ,यह सब मेरे ही नाम है, अंत में इन गुणों को पाने का उपाय और इसका फल बताया गया है। अर्थात इन सबका मै ही आश्रय हूं ।

पञ्चदश अध्याय - पुरुषोत्तम योग
इस अध्याय में 20 श्लोक हैं। इसमें श्रीकृष्ण कहते हैं कि दैवी प्रकृति वाले ज्ञानी पुरुष सर्व प्रकार से मेरा भजन करते हैं तथा आसुरी प्रकृति वाले अज्ञानी पुरुष मेरा उपहास करते हैं।

षष्टदश अध्याय - दैवासुरसंपद्विभाग योग
इस अध्याय में 24 श्लोक हैं। श्रीकृष्ण अर्जुन को सम्बोधित करते हुए कहते है कि कर्तव्य और अकर्तव्य की व्यवस्थाओं में शास्त्र ही परमाण है,ऐसा तू शास्त्र विधि से नियत किये हुए कर्म को ही करने के योग्य है,तथा श्रीकृष्ण स्वाभाविक रीति से ही दैवी प्रकृति वाले ज्ञानी पुरुष तथा आसुरी प्रकृति वाले अज्ञानी पुरुष के लक्षण के बारे में अर्जुन को बताते हैं।

सप्तदश अध्याय - श्रद्धात्रय विभाग योग
इस अध्याय में 28 श्लोक हैं। इसमें श्रीकृष्ण अर्जुन को यह बताते हैं कि जो शास्त्र विधि का ज्ञान न होने से तथा अन्य कारणों से शास्त्र विधि छोडने पर भी यज्ञ, पूजा आदि शुभ कर्म तो श्रद्धापूर्वक करते हैं, उन्हें किस प्रयोजन अथवा नियोजन से कार्य करना उचित होगा अर्थात उनकी स्थिति क्या होती है। इसके बारे में विस्तृत वर्णन किया गया है।

अष्टादश अध्याय- मोक्ष-संन्यास योग
इस अध्याय में 78 श्लोक हैं। और यही अध्याय गीता का सार भी कहा गया है, क्योंकि श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते है कि जहाँ योगेश्वर श्रीकृष्ण भगलान हैं और जहाँ गाण्डीव धनुर्धारी अर्जुन हैं, वहीं पर श्री, विजय ,विभूति और अचल नीति

है। इसमें अर्जुन, श्रीकृष्ण से न्यास यानी ज्ञानयोग का और त्याग अर्थात फलासक्ति रहित कर्मयोग का तत्व जानने की इच्छा प्रकट करते हैं। इसीलिए श्रीकृष्ण और अर्जुन के इस रहस्य युक्त, कल्याणकारक और अद्भुत संवाद को सर्वयोगिक माना गया है जो पूरे विश्व के लिए प्रेरणा दायक है।

अथ प्रथमोऽध्यायः- अर्जुनविषादयोग

दोनों सेनाओं के प्रधान शूरवीरों और अन्य महान वीरों का वर्णन

धृतराष्ट्र उवाच

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः ।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत संजय ॥1-1॥

भावार्थ : धृतराष्ट्र बोले- हे संजय! धर्मभूमि कुरुक्षेत्र में एकत्रित, युद्ध की इच्छावाले मेरे और पाण्डु के पुत्रों ने क्या किया?॥1॥

संजय उवाच

दृष्टवा तु पाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा ।
आचार्यमुपसंगम्य राजा वचनमब्रवीत् ॥1-2॥

भावार्थ : संजय बोले- उस समय राजा दुर्योधन ने व्यूहरचनायुक्त पाण्डवों की सेना को देखा और द्रोणाचार्य के पास जाकर यह वचन कहा॥2॥

पश्यैतां पाण्डुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम् ।
व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता ॥

भावार्थ : हे आचार्य! आपके बुद्धिमान् शिष्य द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न द्वारा व्यूहाकार खड़ी की हुई पाण्डुपुत्रों की इस बड़ी भारी सेना को देखिए॥3॥

अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि ।
युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ॥
धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान् ।
पुरुजित्कुन्तिभोजश्च शैब्यश्च नरपुङ्गवः ॥
युधामन्युश्च विक्रान्त उत्तमौजाश्च वीर्यवान् ।
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः ॥

भावार्थ : इस सेना में बड़े-बड़े धनुषों वाले तथा युद्ध में भीम और अर्जुन के समान शूरवीर सात्यकि और विराट तथा महारथी राजा द्रुपद, धृष्टकेतु और चेकितान तथा बलवान काशिराज, पुरुजित, कुन्तिभोज और मनुष्यों में श्रेष्ठ शैब्य, पराक्रमी युधामन्यु तथा बलवान उत्तमौजा, सुभद्रापुत्र अभिमन्यु एवं द्रौपदी के पाँचों पुत्र- ये सभी महारथी हैं॥4-6॥

अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम ।
नायका मम सैन्यस्य सञ्ज्ञार्थं तान्ब्रवीमि ते ॥

भावार्थ : हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! अपने पक्ष में भी जो प्रधान हैं, उनको आप समझ लीजिए। आपकी जानकारी के लिए मेरी सेना के जो-जो सेनापति हैं, उनको बतलाता हूँ॥7॥

भवान्भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिञ्जयः ।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिस्तथैव च ॥

भावार्थ : आप-द्रोणाचार्य और पितामह भीष्म तथा कर्ण और संग्रामविजयी कृपाचार्य तथा वैसे ही अश्वत्थामा, विकर्ण और सोमदत्त का पुत्र भूरिश्रवा॥8॥

अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः ।
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः ॥

भावार्थ : और भी मेरे लिए जीवन की आशा त्याग देने वाले बहुत-से शूरवीर अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित और सब-के-सब युद्ध में चतुर हैं॥9॥

अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम् ।
पर्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम् ॥

भावार्थ : भीष्म पितामह द्वारा रक्षित हमारी वह सेना सब प्रकार से अजेय है और भीम द्वारा रक्षित इन लोगों की यह सेना जीतने में सुगम है॥10॥

अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः ।
भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि ॥

भावार्थ : इसलिए सब मोर्चों पर अपनी-अपनी जगह स्थित रहते हुए आप लोग सभी निःसंदेह भीष्म पितामह की ही सब ओर से रक्षा करें॥11॥

दोनों सेनाओं की शंख-ध्वनि का वर्णन

तस्य सञ्जनयन्हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः ।
सिंहनादं विनद्योच्चैः शंख दध्मो प्रतापवान् ॥

भावार्थ : कौरवों में वृद्ध बड़े प्रतापी पितामह भीष्म ने उस दुर्योधन के हृदय में हर्ष उत्पन्न करते हुए उच्च स्वर से सिंह की दहाड़ के समान गरजकर शंख बजाया॥12॥

ततः शंखाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः ।
सहसैवाभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥

भावार्थ : इसके पश्चात शंख और नगाड़े तथा ढोल, मृदंग और नरसिंघे आदि बाजे एक साथ ही बज उठे। उनका वह शब्द बड़ा भयंकर हुआ॥13॥

ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ ।
माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौ शंखौ प्रदध्मतुः ॥

भावार्थ : इसके अनन्तर सफेद घोड़ों से युक्त उत्तम रथ में बैठे हुए श्रीकृष्ण महाराज और अर्जुन ने भी अलौकिक शंख बजाए॥14॥

पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनञ्जयः ।
पौण्ड्रं दध्मौ महाशंख भीमकर्मा वृकोदरः ॥

भावार्थ : श्रीकृष्ण महाराज ने पाञ्चजन्य नामक, अर्जुन ने देवदत्त नामक और भयानक कर्मवाले भीमसेन ने पौण्ड्र नामक महाशंख बजाया॥15॥

अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ॥

भावार्थ : कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर ने अनन्तविजय नामक और नकुल तथा सहदेव ने सुघोष और मणिपुष्पक नामक शंख बजाए॥16॥

काश्यश्च परमेष्वासः शिखण्डी च महारथः ।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजितः ॥
द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते ।
सौभद्रश्च महाबाहुः शंखान्दध्मुः पृथक्पृथक् ॥

भावार्थ : श्रेष्ठ धनुष वाले काशिराज और महारथी शिखण्डी एवं धृष्टद्युम्न तथा राजा विराट और अजेय सात्यकि, राजा द्रुपद एवं द्रौपदी के पाँचों पुत्र और बड़ी भुजावाले सुभद्रा पुत्र अभिमन्यु- इन सभी ने, हे राजन्! सब ओर से अलग-अलग शंख बजाए॥17-18॥

स घोषो धार्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत् ।
नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो व्यनुनादयन् ॥

भावार्थ : और उस भयानक शब्द ने आकाश और पृथ्वी को भी गुंजाते हुए धार्तराष्ट्रों के अर्थात आपके पक्षवालों के हृदय विदीर्ण कर दिए॥19॥

अर्जुन का सैन्य परिक्षण, गाण्डीव की विशेषता

अर्जुन उवाचः

अथ व्यवस्थितान्दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान् कपिध्वजः ।
प्रवृत्ते शस्त्रसम्पाते धनुरुद्यम्य पाण्डवः ॥
हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते ।
सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत ॥

भावार्थ : हे राजन्! इसके बाद कपिध्वज अर्जुन ने मोर्चा बाँधकर डटे हुए धृतराष्ट्र-संबंधियों को देखकर, उस शस्त्र चलने की तैयारी के समय धनुष उठाकर हृषीकेश श्रीकृष्ण महाराज से यह वचन कहा- हे अच्युत! मेरे रथ को दोनों सेनाओं के बीच में खड़ा कीजिए॥20-21॥

यावदेतान्निरीक्षेऽहं योद्धुकामानवस्थितान् ।
कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन् रणसमुद्यमे ॥

भावार्थ : और जब तक कि मैं युद्ध क्षेत्र में डटे हुए युद्ध के अभिलाषी इन विपक्षी योद्धाओं को भली प्रकार देख न लूँ कि इस युद्ध रूप व्यापार में मुझे किन-किन के साथ युद्ध करना योग्य है, तब तक उसे खड़ा रखिए॥22॥

योत्स्यमानानवेक्षेऽहं य एतेऽत्र समागताः ।
धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः ॥

भावार्थ : दुर्बुद्धि दुर्योधन का युद्ध में हित चाहने वाले जो-जो ये राजा लोग इस सेना में आए हैं, इन युद्ध करने वालों को मैं देखूँगा॥23॥

संजय उवाच

एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत ।
सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम् ॥
भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम् ।
उवाच पार्थ पश्यैतान् समवेतान् कुरूनिति ॥

भावार्थ : संजय बोले- हे धृतराष्ट्र! अर्जुन द्वारा कहे अनुसार महाराज श्रीकृष्णचंद्र ने दोनों सेनाओं के बीच में भीष्म और द्रोणाचार्य के सामने तथा सम्पूर्ण राजाओं के सामने उत्तम रथ को खड़ा कर इस प्रकार कहा कि हे पार्थ! युद्ध के लिए जुटे हुए इन कौरवों को देख॥24-25॥

तत्रापश्यत्स्थितान् पार्थः पितॄनथ पितामहान् ।
आचार्यान्मातुलान्भ्रातॄन्पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा ॥
श्वशुरान् सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि ।

भावार्थ : इसके बाद पृथापुत्र अर्जुन ने उन दोनों ही सेनाओं में स्थित ताऊ-चाचों को, दादों-परदादों को, गुरुओं को, मामाओं को, भाइयों को, पुत्रों को, पौत्रों को तथा मित्रों को, ससुरों को और सुहृदों को भी देखा॥26 और 27 वें का पूर्वार्ध॥

तान्समीक्ष्य स कौन्तेयः सर्वान् बन्धूनवस्थितान् ॥
कृपया परयाविष्टो विषीदन्त्रिदमब्रवीत् ।

भावार्थ : उन उपस्थित सम्पूर्ण बंधुओं को देखकर वे कुंतीपुत्र अर्जुन अत्यन्त करुणा से युक्त होकर शोक करते हुए यह वचन बोले। ॥27 वें का उत्तरार्ध और 28 वें का पूर्वार्ध॥

अर्जुन का विषाद,भगवान के नामों की व्याख्या

अर्जुन उवाच

दृष्टेवमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम् ॥
सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति ।
वेपथुश्च शरीरे में रोमहर्षश्च जायते ॥

भावार्थ : अर्जुन बोले- हे कृष्ण! युद्ध क्षेत्र में डटे हुए युद्ध के अभिलाषी इस स्वजनसमुदाय को देखकर मेरे अंग शिथिल हुए जा रहे हैं और मुख सूखा जा रहा है तथा मेरे शरीर में कम्प एवं रोमांच हो रहा है॥28 वें का उत्तरार्ध और 29॥

गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्वक्चैव परिदह्यते ।
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः ॥

भावार्थ : हाथ से गांडीव धनुष गिर रहा है और त्वचा भी बहुत जल रही है तथा मेरा मन भ्रमित-सा हो रहा है, इसलिए मैं खड़ा रहने को भी समर्थ नहीं हूँ॥30॥

निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव ।
न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ॥

भावार्थ : हे केशव! मैं लक्षणों को भी विपरीत ही देख रहा हूँ तथा युद्ध में स्वजन-समुदाय को मारकर कल्याण भी नहीं देखता॥31॥

न काङ्क्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च ।
किं नो राज्येन गोविंद किं भोगैर्जीवितेन वा ॥

भावार्थ : हे कृष्ण! मैं न तो विजय चाहता हूँ और न राज्य तथा सुखों को ही। हे गोविंद! हमें ऐसे राज्य से क्या प्रयोजन है अथवा ऐसे भोगों से और जीवन से भी क्या लाभ है?॥32॥

येषामर्थे काङ्क्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च ।
त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च ॥

भावार्थ : हमें जिनके लिए राज्य, भोग और सुखादि अभीष्ट हैं, वे ही ये सब धन और जीवन की आशा को त्यागकर युद्ध में खड़े हैं॥33॥

आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः ।
मातुलाः श्वशुराः पौत्राः श्यालाः संबंधिनस्तथा ॥

भावार्थ : गुरुजन, ताऊ-चाचे, लड़के और उसी प्रकार दादे, मामे, ससुर, पौत्र, साले तथा और भी संबंधी लोग हैं ॥34॥

एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन ।
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किं नु महीकृते ॥

भावार्थ : हे मधुसूदन! मुझे मारने पर भी अथवा तीनों लोकों के राज्य के लिए भी मैं इन सबको मारना नहीं चाहता, फिर पृथ्वी के लिए तो कहना ही क्या है?॥35॥

निहत्य धार्तराष्ट्रान्न का प्रीतिः स्याज्जनार्दन ।
पापमेवाश्रयेदस्मान् हत्वैतानाततायिनः ॥

भावार्थ : हे जनार्दन! धृतराष्ट्र के पुत्रों को मारकर हमें क्या प्रसन्नता होगी? इन आततायियों को मारकर तो हमें पाप ही लगेगा॥36॥

तस्मान्नार्हा वयं हन्तुं धार्तराष्ट्रान्स्वबान्धवान् ।
स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव ॥

भावार्थ : अतएव हे माधव! अपने ही बान्धव धृतराष्ट्र के पुत्रों को मारने के लिए हम योग्य नहीं हैं क्योंकि अपने ही कुटुम्ब को मारकर हम कैसे सुखी होंगे?॥37॥

यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः ।
कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम् ॥
कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्तितुम् ।
कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन ॥

भावार्थ : यद्यपि लोभ से भ्रष्टचित्त हुए ये लोग कुल के नाश से उत्पन्न दोष को और मित्रों से विरोध करने में पाप को नहीं देखते, तो भी हे जनार्दन! कुल के नाश से उत्पन्न दोष को जानने वाले हम लोगों को इस पाप से हटने के लिए क्यों नहीं विचार करना चाहिए?॥38-39॥

कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः ।
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत ॥

भावार्थ : कुल के नाश से सनातन कुल-धर्म नष्ट हो जाते हैं तथा धर्म का नाश हो जाने पर सम्पूर्ण कुल में पाप भी बहुत फैल जाता है॥40॥

अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः ।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकरः ॥

भावार्थ : हे कृष्ण! पाप के अधिक बढ़ जाने से कुल की स्त्रियाँ अत्यन्त दूषित हो जाती हैं और हे वार्ष्णेय! स्त्रियों के दूषित हो जाने पर वर्णसंकर उत्पन्न होता है॥41॥

संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च ।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ॥

भावार्थ : वर्णसंकर कुलघातियों को और कुल को नरक में ले जाने के लिए ही होता है। लुप्त हुई पिण्ड और जल की क्रिया वाले अर्थात श्राद्ध और तर्पण से वंचित इनके पितर लोग भी अधोगति को प्राप्त होते हैं॥42॥

दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसंकरकारकैः ।
उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः ॥

भावार्थ : इन वर्णसंकरकारक दोषों से कुलघातियों के सनातन कुल-धर्म और जाति-धर्म नष्ट हो जाते हैं॥43॥

उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन ।
नरकेऽनियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम ॥

भावार्थ : हे जनार्दन! जिनका कुल-धर्म नष्ट हो गया है, ऐसे मनुष्यों का अनिश्चितकाल तक नरक में वास होता है, ऐसा हम सुनते आए हैं॥44॥

अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम् ।
यद्राज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः ॥

भावार्थ : हा! शोक! हम लोग बुद्धिमान होकर भी महान पाप करने को तैयार हो गए हैं, जो राज्य और सुख के लोभ से स्वजनों को मारने के लिए उद्यत हो गए हैं॥45॥

यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः ।
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत् ॥

भावार्थ : यदि मुझ शस्त्ररहित एवं सामना न करने वाले को शस्त्र हाथ में लिए हुए धृतराष्ट्र के पुत्र रण में मार डालें तो वह मारना भी मेरे लिए अधिक कल्याणकारक होगा॥46॥

संजय उवाच

एवमुक्त्वार्जुनः सङ्ख्ये रथोपस्थ उपाविशत् ।
विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः ॥

भावार्थ : संजय बोले- रणभूमि में शोक से उद्विग्न मन वाले अर्जुन इस प्रकार कहकर, बाणसहित धनुष को त्यागकर रथ के पिछले भाग में बैठ गए॥47॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादेऽर्जुनविषादयोगो नाम प्रथमोऽध्यायः। ॥1॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः ~ सांख्ययोग

अर्जुन की कायरता के विषय में श्री कृष्णार्जुन-संवाद

संजय उवाच

तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् ।
विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः ॥2.1॥

भावार्थ : संजय बोले- उस प्रकार करुणा से व्याप्त और आँसुओं से पूर्ण तथा व्याकुल नेत्रों वाले शोकयुक्त उस अर्जुन के प्रति भगवान मधुसूदन ने यह वचन कहा॥1॥